महात्मा और ईश्वर

डॉ शिवदत्त शर्मा
मुरलीपुरा स्कीम, जयपुर

महात्मा की जितनी महिमा कही जाए उतनी कम है। संसार मे महात्मा बहुत कम हैं, और हैं तो मिलना मुश्किल है। महात्मा को जान जाएं तो महात्मा बन जाएं, महात्मा भगवान की कृपा से ही मिलते हैं। यहाँ हमें महात्मा के लक्षण भी समझ लेना चाहिए की, जिनके दर्शन, स्पर्श, स्मरण, वार्तालाप से ही ईश्वर की स्मृति, सद्गुण, सदाचार की वृद्धि हो, वे ही अपने लिए महात्मा हैं। जैसे राज्य के चपरासी को देखने से सरकार की याद आती है, महात्मा भी ईश्वर के चपरासी हैं, वे ज्ञान के भंडार हैं, उनके दर्शन से अन्त:करण में ज्ञान की बाहुल्यता होनी चाहिए। वे ज्ञान की लालटेन हैं, अतएव उनसे अज्ञानता जनित दोष दूर हो जाते हैं। जितनी जानकारी हो, श्रद्धा–विश्वास हो, हमारा उतना तो दोष दूर होना ही चाहिए। उनकी वाणी, नेत्र, मन के परमाणु सब जगह व्यापक हों जाएं तो स्वाभाविक ही लाभ होना चाहिए।

नेत्र ज्योति है, वाणी ज्योति है। नेत्र की दृष्टि दूर तक जाए, वहां तक शब्द प्रकाश व्यापक हो जाता है। शब्दो में सभ्यता हो, ओज हो और अज्ञानता का नाश करनेवाली शक्ति हो। शब्द कानो में पड़े तो अज्ञान का नाश हो जाए। महात्मा चेतावनी देते हैं, उनके सँग से झूँठ, चोरी, व्यभिचार–ये दुर्गुण दूर हो जाते हैं।

महात्मा के दर्शन से नेत्र पवित्र हो जाते हैं, उनकी वाणी भीतर जाए तो अन्त:करण पवित्र हो जाता है। उनके दर्शन हो जाए तो हृदय पवित्र हो जाता है। मन मे उनकी स्मृति हो तो मन पवित्र हो जाता है। महात्मा के संग से दोष भाग जाते हैं।

शास्त्र की मर्यादा है कि अपने मे कोई दोष घटित जाए तो उस दोष का प्रचार कर दे, इससे प्रायश्चित हो जाता है, दोष कम हो जाते हैं। ईश्वर और महात्मा के सामने अपने अपराध को मान लें तो अपराध कई गुणा कम हो जाता है। महात्मा के सामने झूंठी सफाई न दे, इनके सामने साफ कह दें कि ये अपराध हो गया वह माफ हो जाएगा।

महात्मा ईश्वर को प्राप्त किए हुए पुरुष होते हैं अतएव ईश्वर को कहना और इनके आगे कहना बराबर ही है।

अपराध करके छिपाएं तो सजा मिलती है। जनता भी ईश्वर है लोक समूह के आगे भी अपने दोषों को यदि प्रकट कर दें तो दोष के भागी नही रहते। ईश्वर के आगे भी पाप प्रकट कर दें और क्षमा मांग लें और आगे अपराध नही करने की प्रतिज्ञा करलें तो वहां भी क्षमा मिल जाती है, हाँ जानबूझ कर गलती, की तो उसकी क्षमा नही है।

कोई आदमी शाप, वरदान या आशीर्वाद दे, और यदि वह तपस्वी है तो तप घटता है। लेकिन साधक आश्वासन दे तो भी लाभ मिलता है। आश्वासन यह कि कोई बात नही, ऐसे संतोष कराया जाता है। साधक सोना है, सिद्ध पारस है वह खर्च नही होता, सोना खर्च होता है, भगवान भी पारस है। विश्वामित्र दुष्टों के नाश के लिए भगवान श्रीराम को मांगने गए। द्रोपदी ने भीष्म से पूछा-- मैं हार गई ? भीष्म मौन बेठे रहे, कहते हैं युधिष्ठिर से पूछो। युधिष्ठिर भी मौन हैं। पतिव्रता अपने पतिव्रत धर्म से आत्मरक्षा कर सकती थी, लेकिन मानुषी शक्ति से काम चले तो देवी शक्ति खर्च नही करनी चाहिए। द्रोपदी ने क्रोध नही किया, अत्याचार हुआ उसे सहन किया। भगवान को आतुर होकर-- हे नाथ, हे नाथ, । कह कर पुकारा। शाप नही दिया। आपत्तिकाल में ईश्वर से प्रार्थना करें तो वे अवश्य ही सहायता करते हैं और भक्ति का भी नाश नही होता, बल्कि भक्ति की वृद्धि होती है। लेकिन देवताओं से प्रार्थना करने से धन का नाश होता है जबकि भगवान से सकाम प्रार्थना करें तो भक्ति का नाश भी नही होता और मनोकामना भी पूर्ण हो जाती है।

भगवान योग-क्षेम को निबाहते हुए कामना की पूर्ति कर देते हैं। ध्रुव जी को राज्य भी दिया और अपनी भक्ति भी दी। ईश्वर और महात्मा के साथ सम्बद्ध होने से नुकसान नही होता, क्योकि वे ज्ञानी हैं। अज्ञानी से नुकसान की संभावना होती है। अंधा दूसरों को क्या रास्ता दिखाएगा ? भगवान और महात्मा से भेंट हो जाएं तो लाभ ही लाभ होता है नुकसान नही।

भगवान वरदान देते हैं लेकिन लेते कुछ नही अलावा भक्ति के इससे श्रद्धा बनती है। ऐसे ही महात्मा से कोई चीज मांग ली बदले में कोई चीज देना चाहें तो वे टालमटोल करेगें।

प्रहलाद ने कहा था-- आपकी भक्ति करके कुछ मांग लेना वणिक बुद्धि है, इस पर तो भगवान को भी कोई उत्तर नही सूझा तब प्रहलाद ने फिर कहा भक्ति और उपकार करके क्या लेना वे तो स्वयं ही अपने आप मे परिपूर्ण बल रखते हैं।

भगतिहि ग्यानहि नही कछु भेदा। (रा.च.मानस)

एक ज्ञानी हो तो बहुत से ज्ञानी बन जाते हैं, जैसे एक दीपक हो तो अनेको दीपक जल सकते हैं। बत्ती और तेल होना चाहिए। श्रद्धा बत्ती है तो प्रेम तेल है--और इन दोनों की ही जगत को आवश्यकता है। चाहे दीपक न हो बत्ती होगी तो भी प्रकाश हो ही जाएगा, बस श्रद्धा और प्रेम होना चाहिए। वैसे शुद्ध भाव भी बहुत जल्दी काम करता है वहीं प्रेम में यदि स्वार्थ आ जाएगा तो काम मे ज्यादा समय लगेगा। स्वार्थ प्रेम में लाँछन लगाने वाला होता है, प्रेम में स्वार्थ का आना प्रेम नही कलंक होता है। मनुष्य को चाहिए कि ईश्वर के साथ या अपने आपस मे सम्बन्ध हों तो स्वार्थ को निकाल दें, यहां केवल आत्मा के कल्याण का ही स्वार्थ रखें तो अच्छा है।

दूध में जितना पानी होगा उतना ही समय पानी जलने में लगेगा अतएवं स्वार्थ-आसक्ति की मात्रा जितनी अधिक होगी त्याग में भी उतना ही अधिक समय लगेगा।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि
नैव किंचितकरोति सः।। (गीता 4/20)

जो पुरुष समस्त कर्मो में और उनके फलों में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया हो और परमात्मा में नित्य तृप्त हो गया हो वह कर्मो में भली भांति बरतता हुआ भी वास्तव में कुछ नही करता।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न
कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।। (गीता 6/4)

जिस काल मे न तो इंद्रियोंके भोगों में ओर न कर्मो में ही आसक्त होता है उस काल मे सर्वसंकल्पों का त्यागी पुरूष योगारूढ कहा जाता है।

संसार के पदार्थो में आसक्ति है, वह कलंक है। आसक्ति के पेट में सब दोष विद्यमान होते हैं, अतएव संसार, शरीर और भोगों से आसक्ति हटनी चाहिए। विषयासक्ति, संशय, अज्ञान और अश्रद्धा--ये चार बड़े दोष हैं जो साधक का पतन करने वाले हैं।